पुराणों में धर्म और सदाचार

पुराण का शब्दिक अर्थ है – प्राचीन या पुराना। पुराण हमारे पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान का भण्डार है। इनमें इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद, चिकित्सा, काव्य, छन्दशास्त्र, वास्तुशिल्प, चित्रकला, भित्तिचित्र, मूर्तिकला, अध्यात्म, नीतिशास्त्र, तंत्र–मंत्र योग आदि का विपुल भण्डार भरा हुआ है। यास्क मुनि का कथन है – **'पुरा नव भवति'** अर्थात जो पुराना होकर भी नया है, वही पुराण है। वायु पुराण के अनुसार – **'पुरा अनति'** अर्थात जो प्राचीन काल में जीवित था, वही पुराण है। स्कन्दपुराण के अनुसार – **'आत्मा पुराणं वेदनाम्'** अर्थात पुराण वेदों की आत्मा है। पद्म पुराण के अनुसार – जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता हैं। जो ज्ञान वेदों में संक्षिप्त अथवा सूत्र रूप में था, वहीं लोक भाषा में अधिक स्पष्ट करने के लिए आख्यानों के माध्यम से पुराणों में वर्णित किया गया। जो लोग वेदों का अध्ययन–मनन नहीं कर सकते थे, उनके लिए पुराण–साहित्य को व्यवस्थित किया गया। पुराणों में अन्य आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयों के साथ सदाचार एवं धर्म विषय पर विशद व्याख्या मिलती है।

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में पुराण साहित्य का अत्यधिक महत्व है। कठिन एवं गहन वेद मन्त्रों के रहस्य को, वेद–वेदांगों को, दर्शन एवं उपनिषदों को सरल कथा पद्धति से जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने में पुराण साहित्य की भूमिका अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुई है। इन पुराणों में श्रीमद्भागवतपुराण का स्थान अनूठा ही है। भागवत शब्द की व्युत्पत्ति भगवत शब्द से हुई है। भागवत में भगवान की लीलाओं के साथ–साथ भागवत धर्म का भी जगह–जगह निरूपण हुआ है। भागवत के निर्माण से ही हमारे धर्म का नाम भागवत धर्म प्रचलित हुआ और सम्पूर्ण सनातन धर्म भागवत धर्म कहा जाने लगा।

पुराणों में प्रतिपादित धर्म किसी विशेष सम्प्रदाय अर्थात विचारधारा के रूप में नहीं है। यह ऐसे नियमों से सम्बन्धित हे, जिनसे भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है – जैसे ईश्वर की आज्ञा धर्म का लक्षण है। **'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः सधर्मः'** अर्थात जिससे इस लोक में अभ्युदय हो और परम कल्याण की प्राप्ति हो, वह धर्म है। **'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः'** अर्थात धर्म

का हनन करने से धर्म मारता है और धर्म की रक्षा करने से वह रक्षा करता है। **'यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः'** अर्थात जहां कृष्ण है, वहां धर्म है और जहां धर्म है, वहां विजय है। **'धर्मस्तमनु गच्छति'** अर्थात धर्म ही साथी है जो मरने पर भी पीछे-पीछे चलता है। **'धारणाद्धर्ममित्याहुधर्मो धारयति प्रजाः'** अर्थात धारण करने वालों को धर्म कहते हैं, धर्म प्रजा को धारण करता है। निष्कर्षतः **'धार्यते अनेन स धर्मः'** अर्थात जो धारण करने योग्य है वह धर्म है।

पुराणों में पुरूषार्थ चतुष्ट्य की गहन चर्चा की गई है। मानव जीवन की सार्थकता का आधार पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि को ही बताया गया है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य यानी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें धर्म को प्रथम स्थान पर रखा गया है, इसी से ही धर्म तत्व की सर्वोच्चता का पता चलता है। यद्यपि पुरूषार्थ चतुष्ट्य में धर्म को सबसे अधिक महत्व दिया गया है तथापि अर्थ और काम की लालसा इस युग में अत्यन्त प्रबल है। ऐसे में लोग इस बात को भूल जाते हैं कि इन दोनों पुरूषार्थो का मूल धर्म ही है। जो अर्थ और काम धर्म के अनुकूल हैं, परमात्मा उसी में निवास करता है। धर्म रहित काम और अर्थ अनर्थकारी होता है। रावण और दूर्योधन का धर्मरहित काम और अर्थ उनके लिए विनाश का कारण बना। पुराणों के अनुसार अर्थ और काम में लिप्त मनुष्य का जीवन पशुतुल्य है। अतः मनुष्य को सदाचार द्वारा इन पर नियंत्रण रखकर पशु योनि से ऊपर उठना चाहिए। धर्म इसमें उसका सहायक हो सकता है। जीवात्मा का परम लक्ष्य मोक्ष होता है, धर्म उसे इस लक्ष्य तक पहुंचाने की क्षमता रखता है।

धर्म से चित्त की शुद्धि होती है। चित्त की शुद्धि के बिना परमात्मा की ओर ले जाने वाला कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग - सभी कुछ व्यर्थ है। वर्णाश्रम व्यवस्था मानव जीवन की यात्रा के चार पड़ाव हैं। इनमें से होता हुआ मनुष्य सहजता से आत्मज्ञान के क्षेत्र में जा पहूंचता है। स्नान, सन्ध्योपासना, जप-होम, देवार्चन, अतिथि-सत्कार तथा दान ये धर्म के छह कर्म हैं। पुराणों में इन्हें जगह-जगह बताया गया है। पुराणों के अनुसार शुभ आचरण करने वाला, मन को वश में रखने वाला, जप तथा हवन करने वाले व्यक्ति का

कभी पतन नहीं होता। मनुस्मृति में कहा गया है –

अंहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
एतं सामसिकं धर्म चातुर्वण्येऽब्रूवीन्मनुः।।

अर्थात अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना तथा इन्द्रियों को वश में रखना – यह चारों वर्णो के लिए समान धर्म है। धर्म का लक्ष्य है – आत्मा का अभ्युत्थान और भौतिक जगत से मुक्ति। पुराणों में इसी लक्ष्य का प्रतिपादन किया गया है। भारत की हिन्दु जाति का धर्म सनातन और सार्वजनिक है जो उसे विरासत के रूप में पुराणों से ही मिला है। यह धर्म उदार और विराट है। इसमें सभी धर्मो तथा सम्प्रदायों के लिए सम्मानजनक स्थान है। इस धर्म में ऐसा कोई आचरण नहीं है जिसके कारण ईश्वर प्राप्ति में बाधा पड़ती हो। जिस आचरण से मनुष्य ईश्वरपरायण होता है, उसी की चर्चा पुराणों में की गई है। हिन्दु सदैव से धर्मप्राण समाज का अंग रहा है। जीवन के प्रत्येक छोटे–बडे कार्य यहां धर्म के आधार पर किए जाते हैं। हिन्दु दर्शन में सबके लिए सुख और उत्तम स्वास्थ्य की कामना की गई है – **'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'** यही पौराणिक धर्म का वास्तविक स्वरूप और लक्षण है।

सदाचार मानवता का पोषक है, रक्षक है और सुख का परम आधार है। पुराणों में कहा गया है कि यदि कोई मनुष्य चारों वेदों का ज्ञाता हो परन्तु यदि वह सदाचार सम्पन्न नहीं है तो वेद का अनुपम ज्ञान भी उसकी रक्षा नहीं करता। प्राचीन ऋषियों ने अपनी स्मृतियों में सदाचार के नियम निर्दिष्ट किये हैं और विशेष आग्रहपूर्वक विधान किये हैं कि जो कोई इन नियमों का यथावत पालन करता है, उसके मन और तन की शुद्धि होती है, उसको किसी भी वस्तु का अभाव नहीं होता है और अन्ततः उसे अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। महाभारत में सदाचार को धर्म के रूप में निरूपित किया गया है और संत–महात्मा भी उसे ही कहा गया है जो सदाचारी और चरित्रवान है।

पुराणों के अनुसार सदाचार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है – जैसे सूर्योदय से पूर्व प्रातःस्नान, संध्या, तर्पण, वेद–स्वाध्याय, देवदर्शन, तीर्थयात्रा, ईश्वरभक्ति, मातृ–पितृ सेवा, गुरूसेवा, अतिथिसेवा, गौसेवा, परोपकार, सत्यभाषण, मधुरभाषण, मितभाषण, विनम्रता, दया, दान, धर्मपालन इत्यादि सदाचार के अन्तर्गत कहे गये

हैं। सदाचार को मानव जीवन का सर्वोच्च धर्म बताते हुए कहा गया है – **'आचारः परमो धर्मः'** अर्थात सदाचार मनुष्य का परम धर्म है। मनुस्मृति भी कहती है – **'आचार रहित ब्राह्मण वेद के फल को प्राप्त नहीं कर सकता और आचारवान ब्राह्मण वेद के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है।'** भगवान मनु ने मनुष्य की असामयिक मृत्यु के विशेष कारणों का उल्लेख करते हुए **'आचारस्य च वर्जनात्'** कहकर सदाचार के त्याग को भी मृत्यु का एक प्रधान कारण बतलाया है क्योंकि सदाचारविहीनता से ओज, तेज और बुद्धि का ह्रास होने लगता है और धीरे-धीरे उसकी आयु क्षीण होती जाती है।

भारतीय संस्कृति व दर्शन ने विश्व समुदाय को **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का अनुपम सूत्र दिया है जो विश्वशान्ति के लिए उपयोगी ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। सदाचार इस सूत्र का मुख्य आधार है। इससे न केवल विश्वबन्धुत्व की अवधारणा साकार होगी अपितु मानव कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त होगा। वैदिक संस्कृति में सदाचार का नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि संस्कृतिरूपी भवन इसी सदाचार की नींव पर खड़ा होता है। सदाचार विहीन मानव तो मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है। पुराणों का कथन है कि यदि सभ्य और संस्कारी बनना है तो सदाचार को जीवन में प्रमुख स्थान देना ही होगा। इसका कोई विकल्प ही नहीं है। प्राचीन काल के ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा, तपस्वी-मनीषी, विद्वान, धर्मोपदेशकों आदि का सम्मान उनकी सदाचारशीलता पर ही आधारित होता था। आज मनुष्य आचारविहीन हो गया है, इसलिए वह कष्ट, दुःख और तिरस्कार का दंश भोग रहा है। अतः सदाचार की आवश्यकता हर युग में थी, इस युग में भी है और आगे के युगों में भी रहेगी। हम जितना शीघ्र इस सत्य को समझ लेंगे उतना ही हमारे लिये हितकर और कल्याणकारी होगा। पुराणों की यह शिक्षा मानवमात्र के लिए बहुत उपयोगी है।

सत्यापन

सत्यापित किया जाता है कि उक्त आलेख मौलिक एवं अप्रकाशित है।

तारा चन्द आहूजा

ताराचन्द आहूजा
निदेशक-धार्मिक पुस्तकालय,
4/114, एस.एफ.एस. अग्रवाल फार्म,
मानसरोवर, जयपुर-302020
फोन नं0 0141-2395703